पुष्पिका के प्रकाश में श्रीमद्भगवद्गीता का स्वरूप

पं. अनन्त शर्मा
भारतीय विद्या मनीषी

श्रीमद्भगवद्गीता पर हुए अध्ययनों की इयत्ता की संख्या में प्रस्तुत कर पाना जहाँ एक ओर अत्यन्त दुष्कर कार्य है वहीं दूसरी ओर आभ्यन्तर किसी पक्ष को लेकर विचार कर पाना भी उपयुक्त नहीं लग रहा है क्योंकि विभिन्न विद्वान् इस पर विभिन्न दृष्टियों से अवश्यमेव अपने विचार व्यक्त करेंगे ही, अत: गीता के ऐतिह्य को तथा गीता प्रवचनकार भगवान् कृष्ण के मानस को आधार बना कर पुष्पिका के सहारे अपने विचार व्यक्त करने के संकल्प का यह मूर्तरूप आप विद्वज्जनों की सेवा में प्रस्तुत है।

गीता की स्वयं में निविष्ट पुष्पिका का रूप है– ओम् तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुन विषाद योगो नाम प्रथमोऽध्याय:।

आगे प्रत्येक अध्याय को योग विशेष कहते हुए अध्याय गणना का क्रम समाप्ति तक है।

गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित सानुवाद महाभारत में प्रारम्भ में 'इतिश्री महाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि' अंश और है शेष श्रीमदभगवद्गीतासूप. भाग गीता की सामान्य पुष्पिका जैसा है। अन्त में इतना भाग और है कि 'भीष्मपर्वणि तु पञ्चविंशोऽध्याय:।

यद्यपि पूर्व में अनेक भाष्यों और टीकाओं की सत्ता का उल्लेख भगवान् आद्यशंकराचार्य के भाष्य में है तथापि प्राप्ति की दृष्टि से शाङ्करभाष्य ही प्रथम है। वहाँ की पुष्पिका 'इति श्री महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्म पर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्य योगो नाम द्वितीयोऽध्याय:' है।

इस पुष्पिका का प्रारम्भिक अंश अतीव महत्त्वपूर्ण है। पाश्चात्य विद्वानों की स्थापनाओं का अन्धानुकरण करते हुए भारतीय विद्वान् भी प्राय: यह मानते हैं कि मूल महाभारत केवल 24000 पद्यों का था, इसका वर्तमान कलेवर 9वीं 10वीं शताब्दी तक बढते बढते निष्पन्न हुआ है। महाभारत का प्रणयन ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में हुआ है। ऐसे विचारों को धराशायी करने के लिए इस पुष्पिका का 'शतसाहस्री वैयासिकी संहिता' भाग वज्रोपभ है।

भगवान् शंकराचार्य का समय ईसा से 509 वर्ष पूर्व अर्थात् आज से 2510 वर्ष पूर्व का है। उस समय एकलक्ष श्लोकों की व्यास की महाभारत संहिता आचार्य के सम्मुख विद्यमान है। आचार्य के समकालिक उनसे 48 वर्ष बडे भट्ट कुमारिल आदि पर्व से स्वार्गारोहण पर्व तक की महाभारतसंहिता से अनेक पद्य उद्धृत करते हैं तथा विभिन्न विषयों पर अपने गम्भीर विचार व्यक्त करते हैं। इनसे पूर्ववर्ती

महामति कौटिल्य अर्थशास्त्र में (ईसा पूर्व 1500) महाभारत के पूर्ण स्वरूप से अपना परिचय व्यक्त करते हैं। इनसे पूर्व महाभाष्यकार पतञ्जलि तथा भगवान् पाणिनि सूत्रपाठ और गणपाठ में सञ्जय कुरु आदि से तथा 'वासुदेवार्जुनौ' जैसे शतशः महाभारतीय वचनों से महाभारत के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। अतः महाभारत को ईसापूर्व प्रथम द्वितीय शताब्दि में निर्मित बनाना जानाबूझा षड्यन्त्र है।

महाभारत का निर्माण भगवान् वेदव्यास द्वारा युद्ध के 80-90 के पश्चात् किया गया था। जनमेजय के सर्वसत्र का वर्णन इसमें है तथा उसी समय व्यास की आज्ञा से उनकी उपस्थिति में ऋषि वैशम्पायन में जनमेजय को महाभारत सुनाया था। युधिष्ठिर का शासन 36 वर्ष, परिक्षित का 24 वर्ष रहा। इसके पश्चात् जनमेजय का शासन तथा सर्वसत्र आदि को 30वें वर्ष में मानें तो यह 90 वर्ष का काल आता है। महाभारत का अभिन्न भाग होने से यही काल गीता के ग्रथन का हे। विधिपूर्वक गीता का श्रावण और श्रवण प्रथमबार वैशम्पायन और जनमेजय द्वारा किया गया।

भगवान् कृष्ण द्वारा उपदिष्ट गीता का श्रवण अर्जुन के साथ-साथ सञ्जय एवं श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने किया। श्रीकृष्ण की पदावलि में गीता का निजी रूप में श्रवण महाराज धृतराष्ट्र ने दसवें दिन सञ्जय के मुख से किया।

भीष्म पर्व के 13वें अध्याय का प्रारम्भ भीष्मपितामह की मृत्यु के वृत्त से प्रारम्भ होता है। वैशम्पायन कहते हैं–

अथ गावल्गणिर्विद्वान् संयुगादेत्यभारत।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित्।।1।।
ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दुःखितः।
अचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहम्।।2।।

भीष्म का निधन 10वें दिन अपराह्न में हुआ था। युद्धभूमि से लौट कर सञ्जय ने संक्षेप में यह सुनाया जो 11 पद्यों में ग्रथित है। धृतराष्ट्र के द्वारा विस्तरशः सारी बातें सुनाने के लिये कहने पर सञ्जय प्रथम दिन से दस दिन तक का वृत्तान्त कहता है।

14वां अध्याय धृतराष्ट्र के विलाप का है। 15वें से 18 तक 4 अध्यायों में कौरवों की तैयारी सेना तथा व्यूह रचना का वर्णन है। इसी भाँति 19 से 24 पाण्डवों और कौरवों की सेनाओं की स्थिति व्यूह रचना आदि का मिला जुला वर्णन है। 25वें से गीता का आरंभ है। गीता की भूमिका होने से 'गीता-पर्व' का आरम्भ 13वें अध्याय से ही हो जाता है।

दस दिन पूर्व सुनी गीता सञ्जय द्वारा ज्यों की त्यों 10 दिन बाद सुना दी जाती है इसमें भी अविश्वास को स्थान नहीं है। युद्धवृत्त कथन प्रारम्भ करते हुए सञ्जय कहता है–

नमस्कृत्वा पितुस्तेऽहं पाराशर्याय धीमते।
यस्य प्रसादाद् दिव्यं तत् प्राप्तं ज्ञान मनुत्तमम्।।15।7
दृष्टिश्चालीन्द्रिया राजन् दूराच्छ्रवणमेव च।
परचित्तस्य विज्ञान मतीतानागतस्य च।।8
व्युत्थितोत्पत्तिविज्ञानमाकाशे च गतिः शुभा।
अस्त्रै रसंगोयुद्धेषु वरदानान्महात्मनः।।9
शृणु में विस्तरेणेदं विचित्रं परमाद्भुतम्।
भरतानामभूद् युद्धं यथा तल्लोमहर्षणम्।।10

आपके पिता, धीमान् पराशरनन्दन व्यास को प्रणाम कर मैं यह सब कह रहा हूँ, इस महात्मा व्यास के प्रभाव से मुझे अति श्रेष्ठ दिव्यज्ञान मिला है जिसमें अतीन्द्रिय दृष्टि, दूर श्रवण, परचित्तविज्ञान, भूत-भविष्य का ज्ञान, व्युत्थितोपत्ति विज्ञान, आकाशगमन, तथा युद्धों में अस्त्रों से बचे रहना है। भरतों के उस लोमहर्षण परम अद्भुत युद्ध को विस्तार से सुनिये।

इस विवरण से स्पष्ट है कि अर्जुन के साथ गीता के प्रथम श्रोता सञ्जय, द्वितीय श्रोता सञ्जयमुख से 10वें दिन धृतराष्ट्र, तृतीय श्रोताओं में 90 वर्ष के बाद व्यासशिष्य पैल, शुक वैशम्पायन आदि महाभारताध्ययनकाल में, चतुर्थ श्रोता इसके कुछ ही समय पश्चात् वैशम्पायन मुख से जनमेजय आदि सहस्रों लोग महाभारत श्रवण के समय।

सञ्जय ने धृतराष्ट्र को गद्य में गीता सुनाई थी तथा साक्षात् उसी रूप में जिस रूप में कृष्ण ने अर्जुन को उपदिष्ट की थी, यही वास्तविक 'कृष्णार्जुन संवाद' है। हमें प्राप्त गीता यद्यपि उपदेश की दृष्टि से अपने मूल रूप में ही है तथापि उसका शाब्दिक कलेवर भगवान् वेदव्यास का दिया हुआ है, पद्य व्यास की ही रचना है, महाभारत का अंश होने से पद्यात्मकता अनिवार्य थी। व्यास द्वारा निबद्ध इस गीता का स्वरूप इतिहास का एक अंग होने से क्रम आदि की दृष्टि से मूल गीता से कुछ भिन्न है ऐसा अभिमत समीक्षा चक्रवर्ती श्री मधुसूदन ओझा है जो उनके गीता विज्ञान भाष्य में इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

ब्रूमो वयं तु येऽध्याय विभागाा अत्र दर्शिताः।
ते महाभारतग्रन्थानुरोधादैलिहासिकाः।। प्रथम भाग पृष्ठ 12
अस्ति वैज्ञानिकं शास्त्रं गीतेयं ब्रह्मकर्मणोः।
विशिष्येहात्मविद्यायां बुद्धियोगो विधीयते।।
यस्तु वैज्ञानिकानय विभागान् ज्ञातुचिम्छति।
वैज्ञानिकक्रमस्तस्मै भिन्नवत् परिदर्श्यते।।

श्री ओझाजी ने अलौकिक प्रतिभा के बल से गीता में 4 विधाएँ, 24 उपनिषत् तथा एक सौ साठ उपदेश देखें है जिनको व्याख्या सहित गीता विज्ञान भाष्य में प्रस्तुत किया है–

सन्ति विद्याश्चतस्र उपनिषदों विंशतिश्चतस्रश्च।
उपदेशा: षष्टिशतं सेयं गीतानुगीयतामनिशम्।।12

यहाँ यह ध्यातव्य है कि यहाँ निर्दिष्ट 4 विधा 24 उपनिषत् तथा 160 उपदेश भगवान् कृष्ण के जीवन दर्शन के मौलिक सिद्धान्त है। अत: द्रष्टा के वाक्य होने से इनका श्रुतित्व है। श्रुति का यह रूप भगवान् व्यास के द्वारा उनकी पदावलि में प्रस्तुत किया जाने से स्मृति है अत: युगपदेव इसे श्रुतिस्मृति का स्थान प्राप्त है। यही कारण है कि पूर्व प्रचलित उपनिषदों में से कोई 24 उपनिषत् यहाँ गृहीत नहीं है और न इनका सार ही यहाँ है ये कृष्णदृष्ट एवं कृष्ण प्रोक्त स्वतन्त्र 24 उपनिषत् है। भारतीय वाङ्मय का आर्ष दृष्टि से अपेक्षित अवगाहन न होने से तथा अनेकानेक विदेशीय और स्वदेशीय विद्वानों के प्रतिपादन को युक्ति, प्रमाण के द्वारा भलीभाँति परीक्षित किये बिना स्वीकार कर लेने से गीता में एकसूत्रता न पाकर अनेक विद्वानों ने गीता में प्रक्षेप देखे हैं। इस दृष्टि का केवल एक उदाहरण ही प्रस्तुत करना यथेष्ट होगा जिसमें बताया गया है कि गीता लीन विभिन्न कालिक तीन व्यक्तियों की कृति है।

डॉ. गजानन श्री खैर एम.ए. पीएच.डी का ग्रन्थ 'मूल गीतेचा शोध' है, इसका प्रतिपाद्य है– गीतेचे तीन लेखक व तीन कालखण्ड'। इसमें बताया गया है कि प्रथम लेखक प्रारम्भिक छह अध्यायों का है, द्वितीय लेखक तीसरे छह अध्यायों का तथा तृतीय लेखक मध्यवर्ती छह अध्यायों का है।

ग्रन्थान्त में अर्थात् 161 पृष्ठ के पश्चात् पृष्ठ 162 से 195 तक तीन भिन्न मसियों में गीता मुद्रित है। प्रथम लेखक के पद्य लाल स्याही में, दूसरे लेखक के नीली स्याही में तथा तीसरे लेखक के पद्य काली स्याही में है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अध्याय में भी दो अथवा तीन लेखकों के पद्य स्याही के वर्णों से पृथक् पृथक् मुद्रित है, उदाहरणार्थ प्रथम अध्याय में प्रारम्भ के 19 पद्य पुन: 38 से 44 पद्य तृतीय लेखक के हैं। 20 से 37, 45-47 प्रथम लेखक के हैं।

इससे स्पष्ट है कि सभी अध्यायों में प्राय: एकाधिक लेखकों के तथा कुछ में तीनों लेखकों के पद्य घुले मिले हैं। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का विवेचन यहाँ अवसरोचित होते हुए भी निबन्ध के स्वरूप की सीमा के प्रतिकूल होने से उपयुक्त नहीं है। इतनी ध्वनि इससे निकलती है कि व्यास से लेकर विभिन्न सम्प्रदायाचार्यों तक के सभी मनीषी मिथ्याचारी हैं अथवा विवेकबुद्धि शून्य हैं जो सम्पूर्ण गीता को कृष्ण प्रोक्त एवं व्यास निबद्ध मानते हैं। इनसे भिन्न विश्व के अनेक दार्शनिक भी गीता के महत्त्व और इसके वक्ता के अनन्यसाधारण व्यक्तित्व को यथावत् स्वीकार करते हैं। यह भी यहाँ विचारणीय है कि कृष्ण प्रोक्त गीता को ग्रन्थ रूप भगवान् व्यास ने दिया है, अत: जहाँ जहाँ भी भावसाम्य है वहाँ वहाँ व्यास ने प्राय: पूर्व पद्य को पूर्णरूप में, अर्धरूप में, पादरूप में प्रस्तुत कर दिया है। यदि उन्हीं भावों को व्यक्त

करने वाला कोई पूर्व पद्य रहा हो तो व्यास ने उसे यथावत् ले लिया है अथवा अर्थबोध की दृष्टि से कुछ सरल कर प्रस्तुत कर दिया है। इस प्रकार गीता को प्राय: सम्पूर्ण महाभारत में देखा जा सकता है। इन सब विषयों पर श्री खैर ने तनिक भी विचार नहीं किया है।

महाभारत के अध्ययन से तथा गीता के परिशीलन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण ने अतिशय दृढ संकल्पपूर्वक योग्य पात्र को गीता ज्ञान देने हेतु अपनी ही शक्ति से अनुकूल वातावरण तथा परिस्थिति पैदा की है, गीता का एकमात्र उद्देश्य धर्म का स्वरूप निर्भ्रान्त रूप में प्रकट करना है।

उस युग में सम्पूर्ण समाज वेद वेदाङ्गों का निष्णात होता था, नित्य नैमित्तिक काम्य कर्मों का श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान सभी करते थे, पर्व, समारोह आदि के कृत्य, तीर्थ यात्रा, श्राद्ध, दान दक्षिणा सभी सोत्साह सम्पन्न करते थे, यह सब कुछ होते हुए भी धर्मग्लानि सर्वत्र व्याप्त थी। धर्म का अभ्युदय और नि:श्रेयस साधक रूप लोग भुलाते जा रहे थे, धर्म चरति इति धार्मिक के वास्तविक रूप में लोग धार्मिक नहीं थे, धर्मभीरू थे अथवा धर्मातिक्रमण करने वाले थे, भावुक थे, स्थितप्रज्ञ नहीं थे। इसी का ज्ञान कृष्ण करवाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अपने ही जैसे पात्र को चुना था। कृष्ण ने उसमें मोह उत्पन्न कर विषाद का योग करवाया था, अत: भूमिका रूप प्रथम अध्याय का नाम विषाद योग है।

जन्म से लेकर 89 वर्ष की आयु तक कृष्ण ने सतत अध्यवसाय और स्थितप्रज्ञता से अधर्मरुचिजनों का व्यक्तिश: तथा समुदायश: विरोध और नाश किया है। परिवार, रिश्तेदारी मित्रता आदि की भावना कभी उनके अभियान में बाधक नहीं बनी। यद्यपि ऐसे अवसरों पर उन्होंने अधर्म के समुत्थान तथा धर्मग्लानि को दूर करने के सम्बन्ध में अपने स्पष्ट विचार प्रकट किये हैं किन्तु ये विचार सामयिक नीति के रूप में लिये जा सकते हैं सनातन सार्वभौम सिद्धान्त के रूप में लोग नहीं लेंगे अत: कृष्ण इस रूप में इन्हें व्यक्त करना चाहते थे।

महाभारत युद्ध में 36वें वर्ष पाण्डवों का महाप्रयाण तथा कृष्ण का लीला संवरण हुआ था, उस समय कृष्ण 125 वर्ष के थे, फलत: महाभारत युद्धकाल में 125-36 = 89 वर्ष के थे। यही आयु अर्जुन की थी।

कृष्ण की भाँति ही अर्जुन का जीवन भी संघर्षमय एवं कर्मठ था। वह महान् योद्धा, धनुर्वेदाचार्य, सत्यसन्ध, सानुक्रोश था। भगवान् शंकर के साथ उसने युद्ध किया, अकेले ने निवात-कवचों का संहार किया, गोग्रहण के समय सभी कौरव महारथियों के साथ अकेले में युद्ध किया तथा विजय प्राप्त की। अभिमन्यु एवं सात्यकि का, समस्त वृष्णिकुमारों और अन्य राजकुमारों का, अर्जुन धनुर्वेद का गुरु था। ये सभी ब्रह्मचर्य दीक्षापूर्वक शिक्षा लेने वाले थे। सम्बद्ध पद्य देखिये–

चतुष्पादं दशविधं धनुर्वेद मरिन्दम।
अर्जुनाद् वेद वेदज्ञ: सकलं दिव्यमानुषम्।।

आदि प. 220/73

यह अभिमन्यु के विषय में है कि वेदज्ञ अभिमन्यु ने चतुष्पाद दशविध दिव्य और मानुष धनुर्वेद की शिक्षा अर्जुन से प्राप्त की।

अर्जुनं ये च संश्रित्य राजपुत्रा महाबला:।

अशिक्षन्त धनुर्वेदं रौरवाजिनवासस:।।

तत्रैव शिक्षिता राजन् कुमारा वृष्णिनन्दना।। सभा.प.4/33-4

द्रोणपर्व का प्रसङ्ग है। सूर्यास्त के पश्चात् भी युद्ध रोका नहीं गया। अर्धरात्र का समय हो गया, सैनिक श्रम और निद्रा के वेग से विकल थे। अर्जुन ने इस स्थिति में तत्काल युद्ध बन्द कर देने का आदेश दे दिया। देवों ने महर्षियों ने तथा सभी सेनाओं ने अर्जुन की इस उदारवाणी का अभिनन्दन किया (32)। इस घोषणा से सुख प्राप्त कौरव सेना के सैनिकों ने अर्जुन की वाङ्मय पूजा की–

त्वयिवेदास्तथास्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ।

धर्मस्त्वयि महाबाहो दयाभूतेषुत्तानध।।184/35

यच्चाश्वस्ता स्तवेच्छाम शर्म पार्थ तदस्तुते।

मनसश्च प्रियानर्थान् वीर क्षिप्रमवाप्नुहि।। 36

नरनारायण के नित्य युगल में नर स्थानीय अर्जुन कृष्ण का पैतृस्वस्रेय भ्राता है साथ ही बहनोई भी। ऐसे सर्वगुण सम्पन्न अतएव प्रिय एवं पात्र को कृष्ण ने उपदेश के लिए तैयार किया।

'तैयार किया गया' जैसे वाक्यांश से चौकनें की आवश्यकता नहीं है। आत्म विस्मृतिजन्य मोह तथा तन्निमित्त विषाद अर्जुन के स्वरूप के प्रतिकूल हैं। उसे मोह भी होता है एवं वह भी ऐसा कि कृष्ण के प्रेरक वचनों की भी घोर उपेक्षा कर देता है तथा अकृतप्रज्ञ व्यक्ति की भाँति तर्क करता चला जाता है। यह सब कुछ कृष्ण की इच्छा से हो रहा क्योंकि उसके माध्यम से कृष्ठ समस्त विश्व को यह ज्ञान देना चाहते हैं। कृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया उसका सार सर्वस्व तो अर्जुन युधिष्ठिर को पहले ही दे चुका था–

त्यक्त्वाधर्म च लोभं च मोहं चोधममाश्रिता:।

युध्यध्वमनहंकारा यतोधर्मस्ततोजय:।। भीष्म प. री.11

देवासुर संग्राम में देवों को उपदिष्ट पितामह, ब्रह्मा का यह वचन है। यह कहकर अब अर्जुन अपनी ओर से कहता है–

एवं राजन् विजानीहि ध्रुवोऽस्माकं रणेजय:।

यथा तु नारद: प्राह यत: कृष्णस्ततोजय:।। 21.12

गुणभूतो जय: कृष्णे पृष्ठतोऽभ्येति माधवम्।

तद् यथा विजयश्चास्य सन्नतिश्चापसेगुण:।।13

तस्य ते ज त्र्यथां काश्चिदिह पश्यामि भारत।
यस्य ते जय माशास्ते विश्वमुक् त्रिदिवेश्वरः।।17

कौरवों की सुसज्जित विशाल वाहिनी को देखकर विषादमग्न युधिष्ठिर को समझते हुए अर्जुन का उपसंहार वाक्य था यह।

बृहतीं धार्तराष्ट्रस्य सेनां दृष्ट्वा समुद्यताम्।
विषादभगमद् राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।।21.1

इसी विषाद के नाशक अर्जुन के वचन थे। इससे पूर्व अर्जुन अपनी सेना का वज्रव्यूह बनाा चुका था, इसके पश्चात् एवं युद्धारम्भ के पूर्व घण्टे दो घण्टे पहले की बात यह हो सकती है। इसके तुरन्त पश्चात् ही गीतोपदेश है।

विराटनगर में अज्ञातवास के काल की समाप्ति के क्षणों में राजकुमार उत्तर के सारथि के रूप में अर्जुन होता है। भीष्मादि को देखकर भयभीत उत्तर कहता है–

दृष्ट्वैवहि कुरुनेतान् व्यूढानीकान् प्रहारिणः।
हृषितानि च रोमाणि कश्मलं चागतं मम। विराट प. 38/15

अर्जुन ने आश्वासन देकर उत्तर का कश्मल दूर किया। भगवान् कृष्ण के निर्देश से भगवती दुर्गा का स्तवन कर अर्जुन उनसे विजय का वर प्राप्त करता है। यह गीतोपदेश के ठीक पूर्व की घटना है। अन्तरिक्षवाणी के माध्यम से दुर्गा कहती है–

स्वल्पेनैव तु कालेन शभूञ्जेष्यसि पाण्डव।
नरस्त्वमसि दुर्घर्षः नारायणसहायवान्।। भीष्मपर्व 23/18

इन सभी प्रसंगों से स्पष्ट ही है कि अर्जुन ज्ञानी है, धर्मनिष्ठ है, अनेक युद्धों का विजेता निर्भय महारथ है। अतः इसके समक्ष जय पराजय मृत्यु जैसा प्रश्न नहीं है। वह एक दृष्टि से दुर्बुद्धि दुर्योधन के प्रिय सम्पादन की इच्छा वाले योद्धाओं को देख लेना चाहता है। अतः कृष्ण को कहता है कि अच्युत। दोनों सेनाओं के मध्य मेरा रथ खडा कीजिये। श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के मध्य उस स्थल पर रथ को खड़ा किया जहाँ भीष्म पितामह एवम् उनके रक्षक सभी प्रमुख वीर थे। साथ ही कृष्ण बोले भी इन समवेत कुरुओं का देखो।

अर्जुन दोनों सेनाओं पर दृष्टि डालता है, दृष्टि डालते ही उसे दोनों ओर स्वजनों का विशाल समुदाय एक साथ देखने को मिलता है जिसमें पितृगणो (पिता, चाचा, ताऊ) पितामहों आचार्यों, मातुलों, भाइयों, पुत्रो पौत्रों, पित्रों, श्वसुरों और सुहृदों को मृत्युमुख में जाने को उद्यत देखता है। कृष्ण के वाक्य तथा इस दर्शन से स्वजन स्नेहजन्य मोह अर्जुन को आविष्ट कर लेता है। उनकी मृत्यु की तथा उसके

परिणामों की कल्पना से वह काँप उठता है तथा अतीव विषण्ण हो जाता है। वनपर्व में मोह एवं विषाद आदि के विषय में कहा गया है–

मोहो हि धर्ममूढत्वं मानस्त्वात्माभिमानिता।
धर्मनिष्क्रियतालस्यं शोकस्त्वज्ञानमुच्यते।। वन 395/94
धर्ममूढता मोह एवम् अज्ञान शोक है,
न विषादे मनः कार्यं विषादो विषमुत्तमम्।
मारयत्वकृतप्रज्ञं बालं क्रुद्ध इवोरगः।। 216/24
यं विषादोऽभिभवति विक्रमे समुपस्थिते।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न विद्यते।। 25

विषाद की ओर मन ढला कि महामारक उग्र विषतुल्य विषाद ने मनुष्य को मारा विक्रमकाल में विषाद का होना व्यक्ति को तेजोहीन कर धर्मार्थकाममोक्ष के पुरुषार्थ से हीन कर देता है।

अब तक के समस्त युद्ध या तो शत्रुओं के साथ थे या प्रतिपक्ष में अर्जुन एकाकी था। प्रतिपक्षी योद्धाओं को मारना अथवा न मारना उसके हाथ की बात थी। जैसे गोहरण युद्ध में उसने प्रस्वापनास्त्र से सब को बेहोश कर दिया तथा युद्ध सीमा से बाहर आकर खड़ा हो गया। चेतना आने पर जब दुर्योधन भीष्म पितामह को उलाहना देता है कि आपके हाथों अर्जुन कैसे छूट गया, इसे मसल डालिये। तब भीष्म हँसकर कहते हैं–

क्व ते गता बुद्धि रभूत् क्व वीर्यम्। विराट पर्व 66/20
शान्तिं परां प्राप्य यदास्थितोऽभू
रुत्सृज्य बाणाँश्च धनुर्विचित्रम्।
न त्वेष बीभत्सुरलं नृशंसं
कर्तुं न पापेऽस्य मनो विशिष्टम्।।21।।
त्रैलोक्य हेतोर्नजहेत् स्वधर्म सर्वे न तस्मान्निहता रणेऽस्मिन्।
क्षिप्रंकुरुन् याहि कुरु प्रवीर विजित्यगाश्च प्रतियातुपार्थः।।22।।

दुर्योधन। तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारा बल कहाँ गये? जब पूर्ण मूर्च्छावस्था में, धनुषबाण गिराकर तुम पड़े थे क्या उस समय इय बीभत्सु (अर्जुन) नृशंसतापूर्ण कृत्य करने को तुम सभी के प्राण करने को समर्थ नहीं था? वस्तुतः इसका मन पापकर्म में तनिक भी अनुशासित नहीं है। 20-21 तीनों लोकों की प्राप्ति के लिये भी यह स्वधर्म छोड़नें वाला नहीं है। तभी इसने हम सब का वध नहीं किया। तुम अपने कुरुप्रदेश को तत्काल लौट चलो और वह पार्थ भी गायें जीतकर लौट जावे।।22।।

इस युद्ध में सेनायें निर्णायक युद्ध लड़नेवाली थी अर्जुन का वश नहीं था कि वह प्रियजनों को

बचाले। इसी आशंका से भयभीत वह यह भी भूल जाता है कि युद्ध का उद्देश्य धर्मस्थापना, अधर्मात्माओं को दण्ड देने के माध्यम से है। वह समझ बैठा कि हम राज्य प्राप्ति के लिए लड़ते हुए स्वजनों के नाश पर तुले हैं। इस नृशंस कर्म से हमें विरत हो जाना चाहिये। जिस वर्णसंकरता की भयानक कल्पना करता है इसका ध्यान उसे पूर्वयुद्धओं में क्यों नहीं आया। वह भीख माँग कर जीने के लिये भी तैयार है जिसके लिए कुन्ती ने युधिष्ठिर आदि पुत्रों को कृष्ण के माध्यम से विशेष रूप से अक्षत्रियोचित कर्म कहा था–

भैक्षं विप्रतिषिद्धं ते कृषि नैवोपपद्यते।

क्षत्रियोऽसि क्षतात्भाता बाहुवीर्योपजीविता।।132/31

सन्धि के लिये आये कृष्ण जब असफल लौटते हैं तो कुन्ती से मिलने जाते हैं। उस समय कुन्ती विस्तृत सन्देश में यह बात भी कहती है। वनपर्व 33में भीम युधिष्ठिर को क्षात्रधर्म पालन के लिए कहते हें। इस चर्चा में 49 से 53 तक 5 पद्यों में 'न चार्थो भैक्ष्य चर्येण' 'प्रतिषिद्धा हि ते याच्ञा' भैक्ष्यचर्या न विहिता' रूप में तीन वार भिक्षा का निषेध है। अर्जुन आदि के मानस में ये भाव कूट कूट कर भरे हुए हैं। मोह की प्रबलता से अर्जुन इन सबको भूल जाता है।

अर्जुन जैसे व्यक्ति का इस रूप में मोहा विष्ट होना तथा कर्तव्या कर्तव्य निर्णय में सदैव जागरुक अर्जुन का शस्त्र सम्पात काल में धर्मभीरू हो जाना कृष्ण की इच्छा का ही परिणाम है।

इसे कृष्ण की इच्छा से उद्भूत मानना अकारण नहीं है। कृष्ण कहते हैं–

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।

न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।18/67

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यसि।

भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्वसंशयः।। 68

अध्येष्यते व य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।

ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मेमतिः।।

भगवान् अर्जुन से अपेक्षा रखते हैं कि इस ज्ञान का उपदेश रूप में प्रचार होना चाहिये किन्तु अपात्र को किसी भी स्थिति में यह ज्ञान न दिया जावे।

गुरुशिष्यवृत्ति विना ज्ञान का आदान प्रदान सफल नहीं होता है। इसे भी गीता के आरम्भ में बता दिया गया है। अर्जुन अपनी वास्तविक स्थिति बताते हुए स्वयं को पूर्णतया शिष्य रूप में अर्पित कर श्रेयः के निस्सदिग्ध अनुशासन की प्रार्थना करता है–

कार्पण्य दोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपनाम्।2/7

अर्जुन स्वीकर करता है कि उसका काम्य ब्राह्मणभाव कार्पण्य दोष से दब गया है फलतः क्षत्रिय

रूप स्वभाव भी अकिञ्चित्कर हो गया है तथा धर्म के विषय में वह पूर्णतया मोहग्रस्त हो गया है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने गार्गी को ब्राह्मण और कृपण का स्वरूप बताया है–

गो वा एतदक्षरं गार्गि अविदित्वाऽस्मिन् लोके जुहोति
यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्ष सहस्राणि, अन्तवदेवास्यतद्भवति,
यो वा एतदक्षरं गार्गि अविदित्वाऽस्याल्लोकात् प्रैति स कृपण:,
अथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मण:।

अक्षरतत्त्व की प्रतिष्ठा पर हवन यज्ञ तप आदि की सफलता है, इसे जाने बिना सभी धर्मक्रियायें करने के साथ ही नष्ट हो जाती है। अक्षरतत्त्व को न जानने वाला तथा इस लोक से जाने वाला 'कृपण' है, जो अक्षरतत्त्व को जानकर इस लोक से जाता है वह ब्राह्मण है। अर्जुन इसी अर्थ में कार्पण्य का प्रयोग कर रहा है।

कृष्ण प्रोक्त ज्ञान का तद्भक्तों में उपदेष्टा भगवान् में पराभक्ति की और भगवान् की प्राप्ति करता है। इसी भाँति इस धर्म्यसंवाद का अध्येता ज्ञान यज्ञ से भगवान् का यजन करता है ऐसी मेरी धारणा है।

भगवान् के संकल्प सत्य है अमोघ है, जब तक इस गीतोपदेश को ग्रन्थ रूप न दे दिया जावे तो ये अपेक्षाएँ कैसे पूर्ण होंगी इससे स्पष्ट है कि भगवान् में व्यास के माध्यम से इसके प्रकाशन का संकल्प किया था, वही संकल्प आज मूर्तरूप में है। श्रीमद्भागवत में इसका स्पष्ट संकेत है–

व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञै: कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।
प्रबोधितोऽपीतिहासै र्नाबुध्यत शुचार्पित:।।

निश्चित ही कृष्ण ऐसा अमर उपदेश देना चाहते थे तथा यह सब कुछ उनकी योजना से हो रहा था।

महाभारत में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को उपदिष्ट एक अन्य गीता भी आश्वमेधिक पर्व में 16 से 34 तक 19 अध्यायों में निबद्ध है। इसका नाम अनुगीता है। इसकी भूमिका से भी मद्भगवद्गीता के विषय में श्रीकृष्ण के विचारों का स्पष्ट परिचय मिलता है–

अर्जुन– विदितं मे महाबाहो संग्रामे समुपस्थिते।
माहात्म्यं देवकीमात: तच्च ते रूपमैश्वरम्।।16/5
यत्तद्भगवताप्रोक्तं पुरा केशव सौहृदात्।
तत्सर्वं पुरुषव्याघ्र! नष्टं मे भ्रष्ट चेतस:।।6
मम कौतूहलं त्वस्ति तेष्वर्थेषु पुन: पुन:।
भवाँस्तु द्वारकां गन्ता न चिरादिव माधव!।।7

कृष्णोव्यास:– एवमुक्तस्तु तं कृष्ण: फाल्गुनं प्रत्यभाषत।
परिष्वज्य महातेजा वचनं वदतां वर:।।8

कृष्णो देवकीपुत्र:– श्रावितस्त्वं मयागुह्यं ज्ञापितश्च सनातनम्।
धर्मंस्वरूपिणं पार्थ सर्वलोकाँश्च शाश्वतान्।।
अबुद्ध्यानाग्रहीर्यस्त्वं तन्मेसुमहदप्रियम्।
न च साद्य पुनर्भूय: स्मृतिर्मेसम्भाविष्यति।।10
नूनमश्रद्दधानोऽसि दुर्मेधा ह्यसि पाण्डव।
न च शक्यं पुनर्वक्तु मशेषेण धनञ्जय।
परं हि ब्रह्म कथितं योगयुक्तेन तन्मया।
इतिहासं तु वक्ष्यामि तस्मिन्नर्थे पुरातनम्।।13

जिस अर्जुन के लिए कृष्ण युधिष्ठिर को कहते हैं–

तवभ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च।
मांसान्युत्कृष्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीवते।। भीष्म पर्व 106/33

उसी अर्जुन को अक्षद्दधान तथा दुर्मेधा कहते हैं, गीताज्ञान भूल जाने को सुमहदप्रिय कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि कृष्ण की योजना इस उपदेश की थी। अनुगीता में ही ब्राह्मण गीता है। जिस इतिहास का कृष्ण ने (13वें पद्य में) संकेत किया है वह उनका एक ब्राह्मण के साथ संवाद ज्ञान के विषय में है जिससे कृष्ण की भूतों के प्रति अनुकम्पाा विदित होती है। ब्राह्मण कहता है–

मोक्षधर्म समाश्रित्य कृष्ण! यन्यामपृच्छथा:।
भूतानामनुकम्पार्थं यन्मोहच्छेदनं विभो।।

अन्त में इस ब्राह्मण ब्राह्मणी का परिचय देते हुए कृष्ण कहते है–

मनो मे ब्राह्मणं विद्धि बुद्धिं मे विद्धि ब्राह्मणीम्।
क्षेत्रज्ञ इति यच्चोक्त: सोऽहमेव धनञ्जय!34/12

उपरि उद्धृत भीष्म पर्व के पद्य में कृष्ण अर्जुन के नये सम्बन्ध 'शिष्यत्व' को गिनते हैं। जिसे इस स्थायी रूप में कृष्ण मानते हैं, उनके हृदय के भावों को गीत का रूप देने का प्रशस्त माध्यम अर्जुन क्यों नहीं इस रूप में स्मृत रहेगा। यह एक शब्द 'शिष्य' ही गीता के वास्तविक स्वरूप को व्यक्त करने में सुपर्याप्त है।

समस्त ज्ञानविज्ञान और जीवन की अनुभूतियों का 80-90 वर्षों का सञ्चय जिस योगयुक्त धारणा से सहजरूप में उत्तरोत्तर प्रवाह में व्यक्त होता चला गया है यही इसका गीतत्व है। कृष्ण ने उपनिषदों

का सार नहीं कहा है। उपनिषदादि का सार तो हम अध्ययन अध्यापन प्रवचन आदि में कहते हैं बुद्धि और स्मृति के बल से कण्ठ के द्वारा। अत: इसमें न गीतत्व है और न उपनिषत्त्व है।

जीवन में प्रतिपल अनुवर्तन की कसौटी पर खरे उतरे उपपत्तियुक्त निश्चित सिद्धान्तवचन ही जन्मजन्मान्तर की वासना ग्रन्थियों को खोलने में और ब्रह्मानुभूति को प्राप्त कराने में समर्थ होने से उपनिषत् कहे जाते हैं। श्रुतित्व का यही रूप है। भगवान् कृष्ण का एक एक वचन ऐसा ही हाने से उपनिषत् है श्रुति है। पुष्पिका के 'श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु' का यही भाव है। श्री ओझा जी ऐसी ही 24 उपनिषत् गीता में युक्ति प्रमाणपूर्वक बताते हैं।

पद्य, श्लोक अथवा मन्त्र सुविधा के लिए विषय विभाग की दृष्टि से व्यवहृत नाम है। वेदों में श्लोक हैं तथा गीता में मन्त्र है। अत: पद्यों के कारण गीता को श्रुति न मानना निर्युक्तिक है।

प्रश्नोपनिषत् में 'ऋग्वेद 1.164.12, अथर्व. 9.9.12 के मन्त्र 'पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं.' को 'तदेषा श्लोक:' (1.11) के नाम से बोला गया है। इसी भाँति बृहदारण्यकोपनिषत् 4.4.8 में 'तदेतेश्लोकाभवन्ति' कथन से पढे गये पद्यों में यजुर्वेद (40वाँ) का 'अन्धन्तम: प्रविशन्ति' मन्त्र भी है। इसी भाँति 'ऋचा अभ्युक्तम्' कथन से उद्धृत पद्य वेदों की उपलब्ध शाखा संहिताओं में नहीं मिलते हैं। गीता के उपनिषत्त्व एवं श्रुतित्व पर विचार के समय ये तथ्य दृष्टि में रहने चाहिये।

योग को प्राय: कुछ प्रक्रिया विशेषों तक विशेषत: हठयोग जैसे नामों से बोधित जटिल एवं सर्वसामान्य से असाध्य क्रियाओं तक सीमित कर लिया गया है जो वस्तुत: ठीक नहीं है। दर्शन का स्वरूप सिद्धान्त और योग के समान आश्रयणीयता से निष्पन्न योग्या शब्द 'अभ्यास' और अखाड़ा आदि 'अभ्यासभूमि' के अर्थ में प्राचीन वाङ्मय में प्रसिद्ध रहा है। आयुर्वेद धनुर्वेद आदि की भाँति ज्ञान विज्ञान एवम् आत्मविद्या भी पूर्णतया योग्यासापेक्ष है। कठोपनिषत् के मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथलब्धा विद्यामेतां योग विधिं च कृत्स्नम्। 6/18

इस पूर्वोर्ध मन्त्र में विद्या एवं कृत्स्न योग के साहचर्य को अर्थसिद्धि कर बताया है। योग के अर्थ भी इसी वल्ली के 11वें मन्त्र में (1) स्थिरा इन्द्रियधारणा (2) प्रयत्नाव्यय बताये गये हैं। कृष्ण ने भी गीता में कर्मकौशल और समता आदि योगार्थ बताये हैं। गीता को ब्रह्म विद्या और योग शास्त्र इसी अर्थ में कहा गया है। 18 अध्यायों के 18 नाम योगमूलक ही है। विषयों के सूक्ष्य विभाजन के आधार पर अन्य भी अनेक योग इस ग्रन्थ में है। अत: इसे बारम्बार योगशास्त्र कहा गया है, देह में विद्या, अविद्या, उपदेश्य विषय, ब्रह्म, ऋचा, साम और यजु का योग है। अत: विद्या के साथ योग का अनिवार्य साहचर्य वेदमूल पर ही प्राचीन शास्त्रों में तथा तदनुसार गीता में बताया गया है। एतद् विषयक स्पष्ट अनुशासन अथर्ववेद के इस मन्त्र में है–

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम्।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः समाथो यजुः।

यहाँ अविद्या योग, यज्ञ और कर्म का वाचक हे। पुष्पिका का 'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे' इसी तथ्य को बता रहा है।

इन सभी बिन्दुओं को दृष्टि में रखकर विचार करने पर स्पष्ट है कि गीता अपने वर्तमान रूप में परवर्ती कलेवर वृद्धि का परिणाम नहीं है अपितु श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को युद्धारंभ पूर्व इसी रूप में सामान्यवार्तालाप के रूप में गद्य में कही गयी थी। भाषा इसकी यही थी क्योंकि उस समय समस्त प्राचीन विश्व में संस्कृत की व्यवहार भाषा थी। ईस्वी सन् से 3138 वर्ष पूर्व अर्थात् आज से 5139 वर्ष पूर्व यह प्रवचन किया गया था। दस दिन बाद ही सञ्जय ने धृतराष्ट्र को यह उपदेश सुनाया। अर्जुन के साथ साथ ही भगवान् व्यास ने और व्यास के प्रसाद से सञ्जय ने (10/75) सुना। इसके 90 वर्ष बाद व्यासने इसे पद्यरूप में महाभारत में ग्रथित किया जिसे अध्ययनकाल में वैशम्पायन आदि शिष्यों ने सुना। इसके पश्चात् सौति उग्रश्रवा ने शौनक के दीर्घसत्र में शौनकादि ऋषियों को सुनाया। इस प्रकार ईसा पर्वू 3048 वर्ष से अथवा आज से 5049 वर्ष पूर्व से गीता का यह रूप निरन्तर विद्यमान है।

गीता को कृष्ण ने धर्म मीमांसा का ग्रन्थ कहा है। धर्म संमूढ अर्जुन को धर्ममार्ग पर लगाने का उद्देश्य कृष्ण का था, धर्म के मूल तक जाने के लिये आत्मा, ब्रह्म, वर्णाश्रम, सत्त्वादिगुण, कर्म आदि का इसमें विवेचन है। इस सूत्र को भगवान् आद्यशंकराचार्य ने पकडा है– ''तं धर्मं भगवता यथोपदिष्टं वेदव्यासः सर्वज्ञो भगवान् गीताख्यैः सप्तभिः श्लोकशतैः उपनिबबन्ध'' (उपोद्घात) अपने इस विचार में उन्होंने अनुगीता के 'स हि धर्मः सुपर्याप्तो ब्रह्मणः पदवेदने' पद्यार्थ की (कृष्ण के कथन की) साक्ष्य दी है। वर्णाश्रमधर्म का पालक प्राणवान् व्यक्ति ही गीता के मर्म को समझ पाता है, इस धर्म के प्रति अश्रद्ध अथवा मुमूर्षु के लिये गीता नहीं है 'करिष्ये वचनं तव' जैसे संकल्प का सामर्थ्य न होने से। इति शम्

पीठाचार्य, वेदपुराणस्मृति शोधपीठ
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व पीठाध्यक्ष (धर्म संस्कृति पीठ)
ज.रा.रा.सं.वि., जयपुर